ओ३म्
स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-10 * अंक-1 * मुम्बई * जनवरी-2019 * मूल्य-रु.9/-

वैदिक दर्शन प्रतिष्ठान की ओर से आर्य समाज सांताक्रुज, मुंबई में 'वेद और विज्ञान' विषय पर २७ दिसम्बर २०१८ सम्मान समारोह एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न

किनके हृदय में प्रभु की ज्योति का प्रकाश होता है

आचार्य भद्रसेन

१. योगी के हृदय में ही प्रभु के दर्शन होते हैं–

जो सत्य भाव (सच्चे हृदय) से धर्म का अनुष्ठान कर, योग का अभ्यास करते हैं, उनके ही हृदय में परमात्मा प्रकाशित होता है। (ऋ. ७।३८।२)

२. ब्रह्म को कौन जान सकता है–

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि व्रत, सदाचार, विद्या, योगाभ्यास, धर्म का अनुष्ठान, सत्यङ्ग और पुरुषार्थ से रहित हैं वे जन अज्ञान-रूप अन्धकार से दबे हुए होने के कारण ब्रह्म को नहीं जान सकते। और जो सर्वान्तर्यामी, सबका नियन्ता और सर्वत्र व्याप्त है, उसको जानने के लिए जिनका आत्मा पवित्र है वे ही योग्य होते हैं। अन्य नहीं (यजु. १७/३१)

३. शरीर की पुष्टि तथा आत्मा और अन्तःकरण की शुद्धि प्रभु प्राप्ति का साधन है–

हे मनुष्यों ! तुम लोग धर्म का आचरण, वेद और योग के अभ्यास, तथा सत्सङ्ग आदि कर्मों से शरीर की पुष्टि और आत्मा तथा अन्तःकरण की शुद्धि को सम्पादन कर सर्वत्र अभिव्याप्त परमात्मा को प्राप्त होके सदा सुखी होवो। (यजु. ३२।११)

४. परमात्मा किसे मिलते हैं–

वह परमात्मा अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचार-शून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वर-भक्ति रहित जनों से बहुत दूर है। अर्थात् वे कोटि-कोटि वर्षों तक भी उसको नहीं प्राप्त होते। और वे तब तक जन्म-मरण आदि दुःख सागर में भटकते फिरते हैं कि जब तक उस (परमेश्वर) को प्राप्त नहीं होते। किन्तु वह सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, जितेन्द्रिय, सर्वजनोपकारक, विद्वान्, विचारशील पुरुषों के अत्यन्त निकट हैं। वे सबके आत्माओं में अन्तर्यामीरूप से व्यापक होकर पूर्ण हो रहे हैं। वह (प्रभु) आत्मा का भी आत्मा है। उससे तिल मात्र भी खाली नहीं है, क्योंकि वह अखण्डैक रस होकर सब में व्यापक हो रहा है। उसी को जानने से सुख और मुक्ति मिलती है। अन्यथा नहीं। (आ. वि.)

५. हम उस प्रभु को क्यों नहीं जानते –

हे जीवो ! जो परमात्मा इस सब भुवनों को रचनेवाला विश्वकर्मा है, उसको तुम लोग नहीं जानते, क्योंकि तुम अविद्या से अत्यन्त आवृत्त होकर मिथ्यावाद और नास्तिकपन में फँसकर मिथ्या बकवाद करते फिरते हो। (याद रखो) इसमें तुमको दुःख ही मिलेगा, सुख कदापि नहीं। तुम लोग केवल स्वार्थ साधक (बनकर) शरीर पोषण मात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो, और केवल विषय भोगों के लिए ही अवैदिक कर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो। और जिसने सब भुवन रचे हैं, उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परमात्मा से उल्टे चलते हो इसीलिए उस प्रभु को तुम नहीं जान सकते। (आ.वि.)

६. भगवान किसको अपने आनन्द से पूर्ण करते हैं–

जो सब जगत् का पिता है, वही अपने उपासकों को ज्ञान और आनन्द आदि से परिपूर्ण कर देता है। परन्तु जो मनुष्य सच्ची प्रेम-भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे, उन्हीं उपासकों को परम कृपामय अन्तर्यामी परमेश्वर मोक्ष सुख देके सदा के लिए आनन्दयुक्त कर देंगे।

(ऋ. भा.भू., उपासना प्र.)

७. परमेश्वर की प्राप्ति किसे नहीं होती–

यह उपासना-योग दुष्ट मनुष्य को कभी सिद्ध नहीं होता। क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग होकर अपने मन को शान्त और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं बनाता, तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता, तब तक कितना ही पढ़े अथवा सुने, उसको परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती।

(ऋ. भा.भू., उपा. प्र.)

८. परमात्मा के राज्य में कौन प्रवेश करते हैं–

जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उसकी आज्ञा (पालन) में अत्यन्त प्रेम करके अरण्य अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं के विद्वान् हैं..... वे मनुष्य ही प्राणद्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके, और सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

(ऋ.भा.भू., उ. प्र.)

९. परमात्मा ज्योति का प्रकाश कहाँ पर होता है–

कण्ठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है। जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर भी कहते हैं, उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर रम रहा है। वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशमय स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान या मार्ग नहीं है।

(ऋ. भा. भू., उ. प्र.)

१०. पुरुषार्थी पुरुष को परमेश्वर शीघ्र प्राप्त होता है–

परमेश्वर अत्यन्त दयालु हैं। अतः जो जीव उसकी प्राप्ति के लिए तन, मन, धन से श्रद्धापूर्वक पुरुषार्थ करता है, परमात्मा उनको शीघ्र ही प्राप्त होता है। (स.प्र.प्र.सं. ९ समु.)

❖❖❖

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : १० अंक १ (जनवरी –२०१९)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री, लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : **शुल्क**
— पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/– — एक प्रति : रु. ९/–
— १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/– — वार्षिक : रु. १००/–
— १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/– — आजीवन : रु. १०००/–
— विशेषांक,की दरें भिन्न होंगी ।
वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/– प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/–
चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई –५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
किनके हृदय में प्रभु की ज्योति का प्रकाश...	२
सम्पादकीय	३
फलित ज्योतिष की अमान्य मान्यताओं से	४–५
सुख-दुःख की समस्या	६–७
आनन्द की प्राप्ति	८–९
ज्येष्ठ समीक्षक एवं आर्य पत्रकार प्राचार्य	१०
वेद अपौरुषेय हैं' -	११
विचार शक्ति का चमत्कार	११
आनन्द स्वामी जी मेरी डायरी के एक पन्ने पर	१२
ईश्वर न्यायी है या दयालु?	१३–१४
धार्मिक बनने का आधार	१५–१६

सम्पादकीय

* नव चिंतन नव संकल्प *

दिसम्बर निकल रहा है, जनवरी का महीना आ रहा है, अंग्रेज़ी नया साल आ रहा है। हम इस विवाद में नहीं पड़ते कि यह हमारा नववर्ष है या नहीं है, किन्तु इस नव माह के बहाने हम कुछ नए संकल्प लें, कुछ नया करने की ठाने, अपने जीवन में कुछ नवीनता हेतु चिंतन करें, अपनी कुछ बुराइयों को 'कुछ कमज़ोरियों को समाप्त करने का व्रत लें'...

हर इंसान में कुछ न कुछ दोष व कमियां होती ही हैं किन्तु या तो उसे दिखाई नहीं देती या यूं कहें उसे हम देखने का यत्न ही नहीं करते। यदि कोई व्यक्ति दोष रहित होता है तो उसे अपनी इस दोष रहित जीवन पर ही अहंकार हो जाता है । यह अहंकार भी एक बुराई ही है जो हमें दृष्टिगोचर नहीं होती या अपनी अज्ञानता के कारण उसे अनुभव ही नहीं कर पाते।

खुद में दोष ढूंढनेके बारे सोचना, ढूंढने का प्रयत्न करना और फिर उसे दूर करने का प्रयास करना ये तीन कदम हुए इससे अगला कदम होता है उसे दूर करने के समय आये हुए आलस्य प्रमाद, संकल्प का ह्रास, अपनी हार मान लेने की प्रवृत्ति, पुनरचेष्टा का त्याग आदि रुकावटों को दूर करना । इसके लिए दृढ़ संकल्प की महती आवश्यकता पड़ती है।

ऐसी रूकावटें जब हमारे समक्ष आएं तब हमें स्वामी दयानंद के जीवन से प्रेरणा ले लेनी चाहिए कि उन्होंने बचपन में शिव की प्राप्ति का ज़ो संकल्प लिया था उसे पूरा करने के लिए उनके मार्ग में क्या क्या तकलीफें आयी फिर भी वे हार नहीं माने और अंतत्वोगत्वा उन्होंने अपने उद्देश्य को प्राप्त कर ही लिया।

हम भी ऐसे ही कुछ संकल्प लें और उसे पूरा करने की पुरज़ोर कोशिश करें तभी हमारा जीवन सार्थक हो सकेगा।

सन्दीप आर्य
मो.: ९९६९ ०३७ ८३७

फलित ज्योतिष की अमान्य मान्यताओं से मानव जगत से सबसे बडा भ्रामिक वैचारिक शोषण

पं. उम्मेदसिंह विशारद

उन्नीसवी शताब्दी के सबसे महान समाजिक सुधारक आर्ष और अनार्ष मान्यताओं का रहस्य बताने वाले युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय सम्मुलास के प्रश्नोत्तर में लिखते हैं।

प्र. तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है?

उ. नही, जो उसमे अंक, बीज, रेखागणित विद्या है, वह सब सच्ची, जो फल की लीला है, वह सब झूठी है।

फलित ज्योतिष के द्वारा अवैदिक, व सृष्टि क्रम विज्ञान के अमान्य अनार्ष मान्यताओं को चतुर लोगों द्वारा भारत की जनता का वैचारिक शोषण करके अपना मनोरथ तो पूर्ण किया ही है, अपितु भारत वर्ष को गुलामी के दलदल में धकेलने का भी कार्य किया है। बडे अफसोस के साथ लिखना पड रहा है कि यह पाखण्ड इस वैज्ञानिक युग में भी दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। स्वार्थी और चतुर किन्तु ज्ञान विज्ञान से शून्य लोग भोली-भाली जनता को फलित ज्योतिष की आड मे कई प्रकार से लूट रहे है।

इस माह का लेख फलित ज्योतिष पर लिखने का मन बना इसलिए प्रस्तुत लेख में क्लेवर क्षमता के अनुसार कई उदाहरण सहित लिखा जा रहा है। विस्तार आप स्वयं करके आगे भी प्रेषित करने की कृपा करें।

फलित ज्योतिष का पाखण्ड

कृतं मे दक्षिणेहस्ते जयोमेसव्य आहितः (अथर्व.)

ईश्वरीय व्यवस्था में मानव कर्म करने के लिये स्वतन्त्र है, और क्रमानसार फल प्राप्ति ईश्वरीय व्यवस्था में होती है। मानव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल उसको ईश्वर द्वारा दिया जाता है। अतः मनुष्यों को अपने दिल में भरोसा रखना चाहिए कि यदि पुरुषार्थ मेरे दायें हाथ में है तो सफलता मेरे बायें हाथ में है। अतः संसार में जितने भी कार्य सिद्ध होते हैं वह पुरूषार्थ से होते हैं। मनुष्य के जीवन में अगले क्षण क्या होने वाला है वह नही जानता है। ज्योतिषियों द्वारा फलित आश्वासन भ्रामिक है यह केवल मनुष्य को गुमरा ह करने वाला है।

उदाहरण: भारत में मुगल सामराज्य की नींव डालने वाले लुटेरे बाबर की जीवन की एक घटना है। जब वह भारत पर आक्रमण करने आया तो भारत के प्रसिद्ध भविष्य बताने वाले ज्योतिष ने बाबर से कहा कि अभी आप भारत पर आक्रमण न करें इससे आपको सफलता नहीं मिलेगी। बाबर ने पूछा आपको यह जानकारी कैसे मिली। ज्योतिष ने कहा हमारे फलित ज्योतिष शास्त्र मे लिखा है। बाबर ने कुछ सोचकर कहा ज्योतिष जी आप यह भी जानते होंगे कि आप और कितने वर्ष जिन्दे रहोगे, ज्योतिष ने कहा अभी मैं ३७ वर्ष और जिन्दा रहूंगा, बाबर ने म्यान से तलवार निकाली और एक ही झटके में ज्योतिष का सिर धड से अलग कर दिया और काह कि जिसको अपने अगले क्षण का पता नही ऐसे पाखण्डी पर क्या विश्वास किया जा सकता है और उस ऐतिहासिक युद्ध में बाबर की विजय हुई और ज्योतिष की बात मिथ्या हुई।

उदाहरण २: आप कल्पना करो कि मेरे सामने एक भोजन का थाल पडा है और उसमे दस कटोरियों है अलग-अलग व्यंजनों की है। पहले मैं कौन सी कटोरी का पदार्थ खाऊंगा ज्योतिष तो क्या स्वयं ईश्वर भी नही बता सकते हैं पहले मैं कौन सी चीज खाऊँगा क्योंकि कर्म करना मेरे स्वतन्त्रता के अधिकार में है।

उदाहरण ३: एक ब्राहमण काशी में दस वर्ष ज्योतिष विद्या पढ़ के अपने गाँव में आया गाँव का एक उजट जाट लाठी लिये अपने खेत में जा रहा था, नमस्ते पश्चात जाट ने पूछा आप कहां से आ रहे हैं, ब्राह्मण बोला मै दस वर्ष काशी से ज्योतिष विद्या पढ के आ रहा हूँ। जाट ने पूछा महाराज ज्योतिष क्या होता है। ब्राह्मण ने बताया हम अगले क्षण आने वाली बातों को पहले बता देते हैं, जाट ने पूछा महाराज मैं पूछूं तो आप बतायेंगे, क्यों नही अवश्य पूछिये। ब्राह्मण बोला मैं उच्च कोटि का भविष्य वक्ता बन गया हूँ। अब जाट में कन्धे से लाठी उठाकर घुमाकर पूछा बता मैं तेरे इस लाठी को कहाँ मारूंगा। यह सुनकर ब्राहमण नीचे ऊपर देखने लगा, यदि मैने कहा कि सिर पे मारेगा तो वह पैरों पर ठोकेगा यदि पैरों पर कहा तो यह सिर पर ठोकेगा। ब्राह्मण सिर झुका कर नीचे देखने लगा। इसलिए फलित ज्योतिष पाखण्ड है।

नव ग्रहों का मानव पर लगाने का भ्रम

प्रश्न (सत्यार्थ प्रकाश): जब किसी गृहस्थ ज्योतिर्विदाभास के पास जाके कहते हैं महाराज इसको क्या है? तब वह कहते है इस पर सूर्यादि क्रूर ग्रह चढे है। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाए, नही तो बहुत पीडित और मर जाय तो भी आश्चर्य नही है।

उत्तर : कहिए ज्योतिर्विद ! जैसी यह पृथ्वी जड है, वैसे ही सूर्य आदि लोक है। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ नही कर सकते। क्या ये चेतन है जो क्रोधित होके दु:ख और शान्त होकर सुख दे सकें।

भोली-भाली जनता को ठगने के लिये ग्रहों का प्रकोप का डर उनके दिलों में बिठा रखा है। प्रत्येक ग्रह जड है और पृथ्वी से लाखो गुना बडे है फिर वह एक छोटे से मनुष्य पर कैसे चढ़ सकते है।

उदाहरण: दो नवयुवक एक बलिष्ट शरीर बालक और दूसरा मरियल सा कमजोर शरीर वाले ज्योतिष के पास जाकर पूछने लगे महाराज हम पर कौन से ग्रह चढे है जो हमारे कोई भी कार्य सिद्ध नही होते। ज्योतिष ने बलिष्ट शरीर वाले युवक से कहा कि तुम पर सूर्य ग्रह चढे हैं तुम्हारा यह अनिष्ट करेंगे, जल्दी पूजा पाठ दान करो हम सूर्य ग्रह को शान्त कर देंगे।

यह सब कोतुहल एक विद्वान युवक देख रहा था, उससे रहा नही गया वह चुप भी कैसे रह सकता था ऋषि दयानन्द का भक्त जो था। उसने ज्योतिष से कहा मैं अभी इन दोनों की परीक्षा ले सकता हूँ क्या। ज्योतिष जी ने अहंकार में कहा अवश्य हमारा कथन कभी गलत नही होता है। अस्तु जुन का महीना था दोपहर का समय था, विद्वान युवक ने दोनों पीडित युवकों सेकहा मैं तुम्हारी परीक्षा लूंगा दोनों के कपडे उतरवाये और नंगे पैर दोनों पक्के फर्श पर खडा कर दिया और आधा घन्टा खडे रहने को कहा। किन्तु यह क्या जो बलिष्ट शरीर वाला युवक था जिस पर सूर्य ग्रह मेहरबान था वह चक्कर खाकर गिर गया और कमजोर शरीर वाला किन्तु दृढ इच्छा वाला वह युवक जिस पर सूर्य ग्रह कुपित थे ज्यों का त्यो खडा रहा अब आर्य युवक ज्योतिष से कहने लगा कहिए महाराज प्रत्यक्ष में आपकी भविष्य वाणी असफल क्यो हुई हैं। वास्तव में सूर्य ग्रह जड है और ताप से अधिक कुछ नही दे शक्ता है। की गरमी का प्रभाव दोनो पर बराबर पडा किन्तु सहन क्षमता मे दोनों अलग-अलग थे। इसलिए नव ग्रहों का ज्योतिष भ्रम है, धोखा है।

शनिग्रह

शनि ग्रह पृथ्वी से लाखों मील दूर है और कई लाख गुना बडा है- बताइए ज्योतिष महाराज वह शनि ग्रह एक छोटे से आदमी पर कैसे लग सकता है, शनि ग्रह के लगने से तो सारी पृथ्वी ही दब जायेगी। वास्तव में ईश्वरीय व्यवस्था में प्रत्येक ग्रह जड है और अपनी-अपनी धुरी पर केन्द्रित है। इस सृष्टि क्रम की व्यवस्था को बनाए रखते है। यह मानव जगत का उपकार ही करते हैं किन्तु अपकार कभी नही करते हैं।

उदाहरण : आश्चर्य होता है शनिवार को कुछ लोगों का धन्धा खूब चलता है वह एक बाल्टी में तेल लेकर जगह-जगह चौराहों पर घरों मे शनि के नाम से लोगो को ठ्गते रहते हैं और अन्धविश्वासी लोग उनकी बाल्टी को सिक्कों से भर देते हैं। क्या शनिदेव मांगने वाले लोगों पर मेहरबान होते हैं। नही यह उनका धन हरण का मार्ग है। और अधिक आश्चर्य होता है अब शनि को देवता बनाकर उनकी मूर्ति भी बना दी गई है और मन्दिर भी बना दिया गया है। ईश्वर भारत वासियों को सुमति दें।

परिवारों के प्रत्येक शुभ कार्यों में
शुभ दिन मुहूर्त निकालना भी भ्रम है।

वास्तव में पृथ्वी पर सब दिन बराबर होते हैं और एक जैसे होते हैं ऋतुओं के अनुसार व जलवायु के अनुसार अपना प्रभाव दिखाते हैं। वैसे प्रत्येक शुभ कार्य करने के लिये प्रत्येक दिन शुभ होता है किन्तु आप अपना शुभ कार्य तब करें जब ऋतु अनुकूल हो स्वास्थय अनुकूल हो परिवार सुख शान्ति में हो वह दिन किसी भी समय शुभ कार्य के लिए शुभ होता है।

एक ज्वलन्त उदाहरण : श्री राम चन्द्र जी कोई साधारण पुरुष न थे वह मर्यादा पुरुषोत्तम थे और उनके कुल गुरु विशिष्ट भी ऋषि ब्रंह्मा के पुत्र थे, श्रीराम को गद्दी पर बैठाने का मुहूर्त विशिष्ट ऋषि ने निकाला था। इसी मुहूर्त मे श्री राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास जाना पडा था। पीछे श्री राम के पिता दशरथ को पुत्र वियोग मे मृत्यू हो गई। तीनों रानियां विधवा हो गयी, आगे चलकर सीता का हरण हुआ, विशिष्ट की शुभ मुहूर्त शुभ कार्य हेतु व्यर्थ गया। इस ऐतिहासिक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि शुभ व अशुभ मुहूर्त ज्योतिष का चलन भी भ्रामिक है।

गणित ज्योतिष अन्त मे : वेदों की शिक्षा के आधार पर गणित ज्योतिष सत्य है, गणित ज्योतिष द्वारा हम सौ वर्ष पहले बता सकते हैं कि क्या होगा। जैसे कि तित्रियों का हिसाब, दिनों का हिसाब ऋतुओं का परिवर्तन, सूर्य व चन्द्र ग्रहण। 'चूकिं यह सारी चीजे' चांद सूर्य और जमीन इन तीनो को नियमानुसार गति पर निर्भर है, जिसमें एक पल का भी अन्तर नही आता। अत: हम सौ साल पहले बतला सकते है कि अमुक तिथि, अमुक वार को अमुक ऋतु में और अमुक समय में सूर्य व चन्द्र ग्रहण होगा, तथा कारण को देखकर कार्य का अनुमान अर्थात कारण को देखकर होने वाले का अनुमान आदि।

आर्य समाज के चौथे नियम में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते है कि:-

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोडने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

पता- गढ़ निवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड।
मो. : ९४११५१२०१९/९५५७६४११८००

गुरुकुल आश्रम आमसेना का ५१ वां एवं आदर्श कन्या गुरुकुल आमसेना का ३८ वां वार्षिक महोत्सव

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी ओड़िशा में आर्यो के तीर्थस्थल गुरुकुल आश्रम आमसेना का ५१ वां एवं आदर्श कन्या गुरुकुल आमसेना का ३८ वां वार्षिक महोत्सव माघ शुल्क द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी वि. सम्वत २०७५ तदनुसार १६,१७,१८ फरवरी शनिवार, रविवार, सोमवार को अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया जागेगा। इस शुभावसर पर देश के प्रसिद्ध साधु सन्यासी विद्वान एवं राजनेता पधारेंगे।

इस पावन अवसर पर सामवेद पारायण महायज्ञ चौ. शीशराम आर्य की पुण्य स्मृति में ७ फरवरी से १८ फरवरी तक पं. वीरेन्द्र पण्डा एवं पं. विशिकेसन शास्त्री के ब्रह्मत्त्व में सम्पन्न होगा। इस अवसर पर ३ विद्वान पुरोहितों का सन्मान चौ. मित्रसेन आर्य की पुण्य स्मृति में परममित्र मानव निर्माण संस्थान रोहतक के द्वारा किया जायेगा।

१७ फरवरी रविवार को व्यायाम सम्मेलन गुरुकुल के ब्रह्मचारी एवं कन्या गुरुकुल की ब्रह्मचारिणियों द्वारा कूम्फू कराटे, लाठी, भाला, छड मोडना आदि आकर्षक व्यायाम प्रदर्शन आचार्य कुजंदेव मनीषी की देख रेख में किया जायेगा।

स्वामी धर्मानन्द सरस्वती
संचालक एवं मुख्याधिष्ठाता

सुख-दुःख की समस्या

चमूपति एम. ए.

ऐहिक सुख में दु:ख:

हम बता चुके हैं कि निरपेक्ष विशुद्ध आनन्द तो परमात्मा ही का स्वभाव है- **स्वर्यस्य च केवलम्** (अथर्व)। उस आनन्द में क्षति नहीं होती, अन्तर नहीं पड़ता। इसके प्रतिकूल जीवों के सुख में दु:ख की मात्रा मिली हुई है। ऐहिक सुख सभी सापेक्षिक सुख हैं। संसार-भर के प्राणी एक-दूसरे की तुलना से सुखी हैं। न कोई केवल सुखी है, न कोई केवल दु:खी है। जीव को विशुद्ध सुख का अनुभव मुक्तावस्था में होता है। उस अवस्था की सिद्धि चाहे जीते-जी हो जाय, चाहे मरकर, वह सुख ऐहिक नहीं, उस पार का सुख कहलाता है।

दु:खाभाववाद

इस समय कई वाद ऐसे प्रचलित हैं जो दु:ख की सत्ता से ही नकार करते हैं। इनमें प्रमुख मानसिक चिकित्सावाद (Mind Cure Movement) है। इस वाद के अनुयायियों का मत यह है कि मनुष्य संकटों की कल्पना अपने मन से करता है। यदि हर समय यही विचार किया जाय कि दु:ख कोई वस्तु नहीं, मैं निर्मल-निर्लेप हँ, मुझे कोई पाप-पाखण्ड छू ही नहीं सकता, तो सभी रोगों का नाश हो जाता है। इस बाद ने कई स्थानों में अपना सिक्का प्रत्यक्ष परीक्षणों द्वारा जमाया है।

इसकी समीक्षा :

तर्कना द्वारा विचार किया जाए तो यह संकल्प करना भी कि मैं निष्पाप हूँ, मुझे दु:ख छू नहीं सकता, दु:ख की सत्ता को किसी-न-किसी रूप से स्वीकार ही करना है। यदि दु:खों की सत्ता काल्पनिक हो, तो भी तो उनकी सत्ता हुई, जिसके विनाशार्थ उक्त जप-जाप का विधान है। वास्तव में यह समस्या इतनी सरल नहीं। हाँ, योग-साधन से आत्मा इतना ऊँचा हो सकता है कि सुख-दु:ख के अनुभव से ऊपर हो जाए। गीता के कथनानुसार- **सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।**

जीवनन्मुक्त :

परन्तु केवल संकल्पमात्र से ऐसा नहीं हो सकता। उक्त अवस्था जीवन्मुक्त पुरुष की है। उसे आत्मति के कारण शेष सुख तथा दु:ख का भान नहीं होता। जैसे किसी विशेष रस के प्रबल आस्वाद के समय शेष रस उस रस में लुप्त हो जाते हैं, ऐसे ही आत्मानन्द-जो सब आनन्दों में परम है-की प्राप्ति की अवस्था में ऐहिक सुख-दु:खों का भान लुप्त हो जाता है। परन्तु ऐहिक सुख-दु:ख का माप तो साधारणजनों की दृष्टि ही से होगा। मुक्त पुरुष सुख-दु:ख का ज्ञान रखता है, परन्तु अपने लिए बह उसके भान-मात्र से ऊँचा हो जाता है।

भोग की असमानता :

इसके विपरीत संसारी लोगों में सुख-दु:ख का तारतम्य रहता ही है। स्वयं आयु एक भोग है। इसकी अवधि सबके लिए बराबर नहीं। कोई जन्म लेते ही मर जाता है, कोई सौ वर्ष और कोई उससे भी अधिक आयु भोगता है। फिर स्वास्थ्य-सुख, सन्तान-सुख, इन सब सुखों की मात्रा सबके लिए बराबर नहीं। न यह बात ही ठीक उतरती है कि प्रत्येक व्यक्ति के सब सुख मिल-मिलाकर दुसरे व्यक्तियों के सुख-दु:ख के समान हों। हमारा इस तारम्य की ओर निर्देश करने का यह अभिप्राय नहीं कि दु:ख केवल आपस की स्पर्धा में है, यद्यपि मत्सर और स्पर्दा संसार के संकटों का बहुत बड़ा भाग है। हमने यहाँ इस तारतम्य का वर्णन इसलिये किया है कि तारतम्य में किसी भी वस्तु की सत्ता का बोध अधिक स्पष्टता से होता है। यदि सब प्राणियों की सुख की मात्रा समान हो, तो उसे सुख या दु:ख कहने में कोई हेतु निर्णायक न हो सकेगा। सुख-दु:ख का तारतम्य ही सुख-दु:ख की पहेली को उपस्थित करता है।

परिस्थिति-भेद :

यह सारतम्य कैसे आता है? प्रकृतिवाद इस तारतम्य का उत्तरदायित्व परिस्थिति-भेद पर डालता है। यदि केवल भौतिक परिस्थिति-भेद इस तारतम्य की पहेली को बुझा दे तो अध्यात्मवाद की आवश्यकता नहीं रहती। प्रकृतिक विज्ञान की आवश्यकता भौतिक परिस्थिति की ओर निर्देश कर देने से पूरी हो जाती है। कोई शरीर निर्बल है। इसका कारण वैज्ञानिकों की दृष्टि में यही है कि इसके माता-पिता दुर्बल थे, अथवा इसे खाने को पूरा अन्न नहीं मिलता। क्यों नहीं मिलता? एक जीव को खाने को पूरा मिले, दूसरे को नहीं - यह क्यों ? जन्म ही क्यों विविध स्थिति के वंशों में होता है? मेरा यत्न सफल नहीं होता और मेरे पड़ोसी को सफलता सहसा मिल जाती है। भौतिक कारण कुछ हों, इनसे आत्मा की सन्तुष्टि नहीं होती। परमात्मा की इच्छा-मात्र पर इस तारम्य का भार डालनेवाले धर्मवादी परमात्मा से न्याय नहीं करते।

परमात्म-लीला :

अपनी असफलता का उत्तरदायित्व दूसरे पर डालना कुछ वीरोचित धीरता नहीं। मनुष्य स्वभाव से न्याय चाहता है। परमात्मा को सभी प्राणी एक-समान हैं। वह अपने अमृतपुत्रों के सुख-दु:ख में तारतम्य क्यों करता है? क्या यह सब ठठोल है? किसी ठठोली को इस उत्तर से सन्तोष हो जाता होगा। धीर पुरुष अवश्य अपने भाग्य के मूल बीज का अपने ही कर्मों में अनुसन्धान करेंगे। कुछ आपत्तियाँ, असफलताएँ, कुछ ईतियाँ ऐसी हैं जिनकी सत्ता का कारण हमारे इस जीवन के कर्म नहीं ठहराए जा सकते। उदाहरणतया मातृ-पितृ-जन्य संस्कार इस जन्म के किन कर्मो का फल हो सकते हैं?

वंश-जन्य संस्कार :

माता-पिता की अपनी आत्मिक सत्ता भी तो है। फिर उनके सुकर्मों या कुकर्मों का फल सन्तति को क्यों भोगना पड़े? एक मनुष्य किसी रोगी अथवा व्यसनी पिता के घर जन्म लेकर पैतक रोग तथा व्यसन का भी दाय-भागी होता है, दूसरा इसके विपरीत स्वस्थ साधुस्वभाव वंशजों की सन्तान होकर जन्मकाल से ही हृष्ट-पुष्ट शरीर तथा निर्दोष मन और मस्तिष्क का भागी बनता है।

पुरुषार्थवाद

कारण? क्या यह सब-कुछ आकस्मिक है? या किसी लीलाप्रिय

विगत-मर्याद प्रभु की लीलामात्र है? दोनों अवस्थाओं में पुरुषार्थवाद के नीचे से इस वाद का यौक्तिकाधार ही खिसक जाता है। यदि जीवन केवलमात्र आकस्मिक घटनाओं की श्रृंखला है तो कोई सुकर्म क्यों करे? पुरुषार्थ क्यों करे? मिलता तो वही है जो परमात्मा कहता और (अथवा या) प्रकृति ला देती है। इस धारण में न वीरता है न बुद्धिमत्ता।

जीवन-श्रृंखला :

वास्तव में वर्तमान जीवन किसी भी आत्मा का पूर्ण जीवन नहीं। जीवन-समस्या का समाधान इकले इस जीवन से नहीं होता। जीवनों की लड़ी प्रतीत होती है। इस जीवन से पूर्व और पर, अन्य जीवनों की श्रृंखला होनी आवश्यक है। वह श्रृंखला वर्तमान सुख-दुःख के तारतम्य का कारण बताकर तत्सम्बन्धी समस्या का समाधान कर देती है। एक जन्म का किया कुछ उसी जन्म में फलित होता है, कुछ दूसरे जन्मों में। अनन्तकाल की अपेक्षा से किसी प्राणी का एक जीवन, समुद्र में एक बिन्दु से अधिक सत्ता नहीं रखता। जैसे एक क्षण का किया उसी क्षण में ही फलित हो, यह बात आवश्यक नहीं, जैसे एक ऋतु का बोया किसी दूसरी ऋतु में. जाकर उगता तथा पकता है, ऐसे ही एक जन्म की कमाई दूसरे जन्म में भी भोगी जाती है। अनन्तकाल की अपेक्षा से एक क्षण और एक जीवन बराबर हैं।

अनन्त जीवन की भावना :

इस धारणा के होते मृत्यु का महत्त्व कम हो जाता है। सुखवाद के उथलापन के स्थान में गम्भीर धैर्य का विकास होता है, और मनुष्य उस रास्त में पड़ जाता है जिसका ध्येय पुरुषार्थ है। अनन्तकाल की भावना में गहराई है। हम अनादिकाल से आते हैं, अनन्तकाल तक रहेंगे। हम विधाता की क्रीड़ा-मात्र नहीं।

पुनर्जन्म

हम अपने भाग्य का निर्माण आप करते हैं। कैसे उत्तम भाव हैं! इन सब भावों का प्रादुर्भाव पुनर्जन्म के सिद्धान्त से सम्बद्ध है। वेद कहता है-

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ।।

- ऋ. १।१६४।३२

जिसने इस (गर्भस्थ) को बनाया है (अर्थात् पिता-माता) वह इसे नहीं जानता। जो इसे देखता है (अर्थात् परमात्मा) वह इससे पिछा हुआ है। वह माता की योनि में लिपटा हुआ बहुत जन्मों को प्राप्त होकर भोग को प्राप्त होता है।

जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।

मरणधर्मा शरीर का अमर जीवन अपनी इच्छा से मरनेवाले (शरीर) के साथ सयोनि होकर गमनागमन करता है।

कइयों का विचार है कि इस जीवन की समाप्ति पर एक नये जीवन का आरम्भ होता है। उसमें कुकर्मियों को अनन्त दण्ड और सुकर्मियों को उनके सुकृत का अनन्त फल मिलता है। सान्त कर्म का अनन्त फल युक्ति-युक्त नहीं, इस वाद पर 'अंधेर नगरी चौपट राजा'' वाली कहावत ही चरितार्थ होती है। कइयों ने अनन्त दण्ड के अत्याचार को तो समझ लिया है, परन्तु अनन्त सुख-भोग में उन्हें आपत्ति नहीं। इसे वे परमात्मा की दया का परिणाम समझते हैं। यह मत कर्म-भीरुओं का हो ही सकता है। परमात्मा स्वभाव से दयालु हैं। स्वयं कर्म-व्यवस्था उनकी दया है। पुण्य और पाप का फल भौतिक भी है, यह अध्यात्म-वादियों के लिए महान् सन्तोष का कारण है। इसी में उनका प्रायश्चित है। किसी पाप के लिए दुःख न भोग केवल उसकी वासना में रहना पड़े, अध्यात्म-दृष्टि के अभ्यासियों को यह असह्य है। यदि बिना निमित्त दया के ही आश्रय से रहना है तो कर्म-फल का झंझट ही उड़ा देना चाहिए। कुछ समय के लिए भी पापियों को नरक का द्वार क्यों दिखाना? जो दया इस अस्थायी नरक के होने से बाधित नहीं होती, वह स्वर्ग के अस्थायी होने से भी बाधित न होगी। स्वर्ग वही है जो हम सुखविशेष के रूप में इस संसार में भोगते हैं।

पुनर्जन्म की कई प्रत्यक्ष साक्षियाँ आए-दिन प्राप्त होती रहती हैं। थोड़े-थोड़े समय पीछे कोई-कोई बालक ऐसा उत्पन्न होता है जो अपने पिछले जन्म की स्मृतियाँ साथ लाता है।'' ऐसे बालक भी देखने में आते हैं जो बिना सिखाए छोटी-सी अवस्था में किसी कला-विशेष, यथा गान, गणिते कविता इत्यादि में निपुण्य पाए गए हैं। वैज्ञानिकों के इन परीक्षणों का समाधान पुनर्जन्म के अतिरिक्त क्या है? क्या अल्पयस्क मनुष्यों के ये चमत्कार-पूर्ण करतब सुख-विशेष नहीं?

एल. ई. ट्रिष्टम ने दिसम्बर १९२४ के 'थियोसोफिस्ट' में ''चमत्कारी बालक'' शीर्षक लेख छपवाया था जिसका कुछ उद्धरण अनुवादक के शब्दों में नीचे दिया जाता है-

न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट से उद्धृत-

रागी बालक

रागविद्या के क्षेत्र में एक छोटा-सा बालक सबको बड़े आश्चर्य में डाल रहा है। उसने आठ वर्ष की आयु में ही कई ऐसे गीत बनाए हैं, जिन्होंने कि डर्क फॉच (Dirk Foch) और थ्योडोर (Theodore) का भी ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

अमेरिकन ढंग के चेहरे से युक्त यह अद्भुत बालक निकोलिन जैडलर (Nicloine Zedeler) का लड़का है जो अब संसार की यात्रा को निकला हुआ है और अमेरिकन नैशनल ऑर्केस्ट्रा का प्रबन्धकर्ता है।

उसकी असाधारण योग्यता का पता कल उस समय लगा जब उसने मिस्टर Engel के घर पर गान किया। टैडी (Teddy) न केवल गान-विद्या में प्रवीण है अपितु वह एक अच्छा कवि और छोटी-छोटी कथाओं का लेखक भी है। इनके अतिरिक्त वह कई प्रकार की नई-नई खेलें भी खेलता है।

छोटे बालकों में से कइयों ने रागविद्या में अच्छा अभ्यास प्राप्त किया है। इनमें से मुख्यतम लॅरिंग लूइस लिंगग्रीन (Laurence Louise Lindgreen) है। यह सीटल (Seattle) में रहती है और उसकी आयु ३ साल की है। वाशिंगटन स्टेट म्यूजिक मैमोरी नामक साम्मुख्य में इसने १००/१०० अंक प्राप्त किये थे। यह पियानो पर कई कठिन-से-कठिन गीत निकाल सकती है। यह Touch Method द्वारा टाइपराइटिंग पर भी तेज हाथ चला सकती है और चतुर्थ श्रेणी के योग्य रीडर्स को भी अच्छी प्रकार पढ़ सकती है।

❖❖❖

आनन्द की प्राप्ति

स्वामी देवव्रत सरस्वती

शास्त्रकार कहते हैं- **सुखार्थ सर्व भूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः। सुखं च न विना धर्मात् तस्माद् धर्म परो भवेत् ।।** सब प्राणियों की प्रवृत्ति या क्रिया सुखाप्राप्ति के लिये होती है और धर्म के आचरण बिना सुख नहीं प्राप्त होता इसलिये सुख पाना है तो धर्माचरण करना चाहिये।

सुख एवं आनन्द में भी अन्तर है। जो इन्द्रियों के अनुकूल हो उसे सुख कहते हैं। यह अस्थायी और क्षणिक होता है। भौतिक पदार्थों से प्राप्त सुख क्षणिक ही होता है। यद्यपि भौतिक पदार्थों के संयोग से सुख-दुःख का कर्त्ता, भोक्ता आत्मा ही होता है परन्तु जड़ धर्म वाले पदार्थों में इतना सामर्थ्य नहीं है कि वे स्थायी सुख या आनन्द की प्राप्ति करा सकें। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि आनन्द किस का विषय है।

ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन अनादि पदार्थ हैं जिनके अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभाव हैं । प्रकृति जड़ धर्म वाली है । जीवात्मा के गुण इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख ज्ञानादि हैं और ईश्वर सत्, चित्, आनन्दस्वरूप है।

आनन्दमयोऽभ्यासात् (वेदान्त. १/१/१२)

वेद एवं उपनिषदों में ईश्वर का अनेक बार आनन्दमय कथन किया है। **तस्माद् वा एतस्माद् विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्मा आनन्दमयः** (तैत्ति. ब्र. ५/११) विज्ञानमय आत्मा से भिन्न परमात्मा आनन्दमय है। वेदों में भी उसको आनन्दस्वरूप कहा है- **नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।** (यजु. १६/४१)

जीवात्मा आनन्दस्वरूप नहीं है । यदि वह आनन्दस्वरूप होता तो फिर कोई भी व्यक्ति इस संसार में दुःखी नहीं दिखाई देता।

कामाच्चनानुमानापेक्षा (वेदान्त. १/१/१८)

जीवात्मा में आनन्द की कामना देखी जाती है। कामना उस पदार्थ की जाती है जो उसके पास नहीं होता।

अस्मिन्नस्य च तद् योगं शास्ति । (वेदान्त १/१/१९)

मुक्ति में जीवात्मा ब्रह्म के सान्निध्य से आनन्द का उपभोग करता है ऐसे शास्त्रकार कहते हैं। रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। (तैत्ति. ब्रह्मा. अनु. ७) वह परमात्मा आनन्द स्वरूप है। इस सृष्टिकर्त्ता आनन्दस्वरूप ब्रह्म को पाकर यह जीवात्मा आनन्दवाला हो जाता है।

आनन्द की मीमांसा–सैषा आनन्दस्य मीमांसा भवति युवा स्यात् साधुयुवा ध्यायक : । आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एका मानुषः आनन्दः । ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्य.. गन्धर्वाणामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य... ते ये शतं प्रजापतेरानन्दा स एको ब्रह्मण आनन्दः

अब आनन्द का विचार करते हैं- कोई पुरुष युवा हो, साधु स्वभाव और उत्साही हो अथवा अच्छा प्रशासक हो, शरीर एवं मन से दृढ़, बलवान् हो और उसे धन-धान्य से भरी हुई पृथिवी का राज्य या अधिकार मिल जाये उसे जो आनन्द होगा यह एक मानुष आनन्द है। ऐसे एक सौ मानुष आनन्द के समान मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द है। उससे सौ गुणा पितरों का आनन्द होता है । इसी भाँति आजानज देव, देव, कर्मदेव, इन्द्र, बृहस्पति और प्रजापति का आनन्द सौ-सौ गुणा जानना चाहिये। ऐसे सौ प्रजापतियों के आनन्द के तुल्य ब्रह्म का आनन्द है। परन्तु यह आनन्द उसे ही प्राप्त होता है जो वेदों का विद्वान् और विषय वासनाओं में आसक्त नहीं हो। जिसका वर्णन वाणी नहीं कर सकती उस आनन्द स्वरूप ब्रह्म को जो जान लेता है उसे किसी से भय नहीं लगता।

ईश्वर आनन्द स्वरूप क्यों है इस पर विचार करना बहुत आवश्यक है। जिन काणों से यह आनन्द स्वरूप है उन्हीं का अनुशीलन करने से आनन्द की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी। केवल उसका नाम अपने मात्र से विशेष उपलब्धि होने वाली नहीं है।

१. आनन्द की व्युत्पत्ति टुनदि समृद्धौ धातु से हुई है। जो सभी ओर से समृद्ध हो, कहीं पर भी किसी प्रकार की न्यूनता न हो उसे ही आनन्दित कहा जा सकता है। ईश्वर का अर्थ स्पष्ट करते हुये योगदर्शन में कहा है -

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुष विशेष ईश्वरः (योग. १/२४)

अविद्या, अस्मिता, राग, अभिनिवेश पाँच क्लेश, पुण्य-अपुण्य रूप कर्म, उनके सुख दुःखात्मक फल और उन कर्मों के फलों के अनुरूप बनी वासनायें आशय कहलाती हैं। ये मन में रहते हुये भी पुरुष में इनका व्यवहार दिखाई देता है । वही इनके फलों की भोगने वाला है । जैसे रणभूमि में जय पराजय सैनिकों की होते हये भी इनके स्वामी राजा का ही जय-पराजय माना जाता है। ईश्वर का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वह- **स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्** (यजु. ४०/८) ईश्वर शुद्ध स्वरूप, शरीर, व्रण, नसनाड़ी से रहित और पाप से पृथक् है। सुख-दुःखादि जीवात्मा को होते हैं क्योंकि वह शरीर वाला और अनादि काल से वासनाओं से आबद्ध है।

२. उपनिषद् में कहा है - यो वै भूमा तत् सुखं नाल्पे सुखमिति जहाँ भूमा अर्थात् अपरिमित गुणों वाला ईश्वर है इसीलिये आनन्द स्वरूप है। जिसे प्राप्त कर उपासक को किसी वास्तु को देखने, सुनने, जानने की इच्छा नहीं रहती। जो भूमा है वही अमृत है। जहाँ आत्मा अन्य वस्तु को देखता, सुनता और जानना चाहता है वह अल्प अर्थात् तुच्छ है।

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने के लिये उसे किसी दूसरे सहायक की आवश्यकता नहीं होती। इसी भाँति जीवों को कर्मानुसार यथायोग्य फल भी वही देता है। ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने से सबके कर्मों को जानता है और उनका फल देता है। **तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम्** (योग. १/२५)।

भय दूसरे से होता है। उसके समकक्ष कोई दूसरा न होने से ईश्वर अभय है।

पराधीन सपनेहु सुख नाहीं । ईश्वर सर्वेश्वर अर्थात् सब का स्वामी

है। जड़-चेतन उसके आधीन है, वह किसी के आधीन नहीं है।

उपरोक्त एवं अन्य बहुत सारे हेतु हैं जो ईश्वर की भूमा अर्थात् महिमा का दिग्दर्शन कराते हैं। जहाँ भूमा है वहीं सुख और आनन्द है।

३. अकामो धीरो अमृत: स्वयम्भू: रसेन तृप्तो न कुतश्चनोन: ।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ।।
(अथर्व. १०/८/४४)

ईश्वर सब प्रकार की कामनाओं से रहित है। अप्राप्त की कामना की जाती है। ईश्वर को सभी पदार्थ सहज ही प्राप्त हैं। वह रसेन तृप्त: रस से तृप्त: रस से तृप्त अर्थात् आनन्द स्वरूप हैं। ईश्वर अजर अर्थात् कभी बूढ़ा नहीं होता। वह सदा युवा ही बना रहता है। क्योंकि जरा-मरणादि शरीर के धर्म हैं। उसको जानने वाला विद्वान् मृत्यु से भयभीत नहीं होता।

४. ईश्वर द्रष्टा है भोक्ता नहीं। मुण्डकोनिषद् कहती है-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय: समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

प्रकृति रूप वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। वे एक दूसरे के सखा हैं। उनमें से एक इस वृक्ष के फल स्वाद लेकर खा रहा है और दूसरा उन फलों को बिना चखे केवल सब कुछ देख रहा है। इनमें फलों के स्वाद लेने वाला जीवात्मा और जो केवल द्रष्टा है वह ईश्वर जानना चाहिये।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशयाशोचति मुह्यमान: ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोक: ।।

यद्यपि वे दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे हैं परन्तु शरीरधारी जीवात्मा प्रकृतिजन्य भोगों में फंस कर जब उन्हें भोगने में असमर्थ हो जाता है, तब शोक करता है। परन्तु ज्यों ही उसकी दृष्टि दूसरे पक्षी (ईश्वर) पर जाती है और वह देखता है कि यह मेरा मित्र इन भोगों से अनासक्त, शान्त और आनन्दित हो विराज रहा है तो उसकी महिमा को देख वह भी शोक रहित हो जाता है।

ईश्वर प्रकृति में व्याप्त होकर भी उससे अलिप्त है और जीवात्मा प्रकृतिजन्य विविध भोगों को भोग सुखी-दुखी हो रहा है। जब वह इनसे विरक्त हो ईश्वर की उपासना में तल्लीन हो जाता है तब **निरंजन: परमं साम्यमुपैति** पाप-पुण्य से छूट निष्कलंक हो परम पुरुष के समान शान्ति और आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

५. ईश्वर सदैव मुक्त स्वभाव है। मुक्ति का स्वरूप ऋग्वेद में बतलाते हुये कहा है-

यत्रज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम् ।
तस्मिन्मां धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्रव ।।

जहाँ अखण्ड ज्ञान का प्रकाश है, जहाँ आनन्द रहता है, वह मुक्ति मुझे प्राप्त कराइये। हे आनन्दमय प्रभो ! मुझ पर कृपा दृष्टि कीजिये।

यत्र आनन्दाश्च मोदाश्च मुद: प्रमुद आसते । कामस्य यत्राप्ता: कामास्तत्र मातृतं कृधीन्द्रायेन्दो परिस्रव ।। (ऋ. ९/११३-१-९११)

हे परमेश्वर जहाँ आमोद-प्रमोद के सभी साधन हैं। संकल्प मात्र से ही सभी कामनाओं की पूर्ति हो जाती है, जहाँ मुक्तात्मा ईश्वर के आनन्द में स्वतन्त्र होकर विचरण करती हैं ऐसे मोक्ष सुख को कृपा करके मुझे प्राप्त कीजिये।

यह समस्त लोक-लोकान्तर ईश्वर के एक अंश में समाहित है। वह ईश्वर तीन पाद अपने मोक्ष स्वरूप में विराजमान हो रहा है।

ईश्वर आनन्दस्वरुप किन कारणों से है उनमें से कुछों का यहाँ विवेचन किया गया है। अन्वेषण करने पर अन्य भी प्रमाण दिये जा सकते हैं क्योंकि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को सर्वथा सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। अब मनुष्य आनन्द की प्राप्ति के लिये क्या करे इसका संक्षेप में वर्णन करते हैं-

१. ईश्वर सभी गुणों से समृद्ध है। मानव उन सभी क्षमताओं से सन्नद्ध नहीं हो सकता परन्तु कुछ गुण तो धारण किये जा सकते हैं जैसे ईश्वर निराकार और शरीरादि से पृथक् है। हम इससे पृथक् नहीं हो सकते परन्तु प्रकृति के विकार शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और उनमें घटित सुख-दु:खादि को विवेक ज्ञान द्वारा अपने से पृथक् कर सकते हैं। ज्ञानाग्नि से वासनाओं को दग्धबीज कर मुक्ति सुख को प्राप्त किया जा सकता है।

२. ईश्वर भूमा स्वरूप है। आत्मा भी योग साधना से उसके बहुत सारे गुणों को धारण करने का सामर्थ्य रखता है। जैसे लोहा अग्नि में तप कर अग्नि का गोला दिखाई देता है वैसे ही मुक्ति में जीवात्मा सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और कर्म फल देने को छोड़कर अनेक सामर्थ्यों का स्वामी बन जाता है।

३. जैसे ईश्वर सांसारिक कामनाओं से दूर है परन्तु उसकी स्वाभाविक ज्ञान-बल-क्रिया बनी रहती है वैसे ही साधक विषयों की तृष्णा को त्याग, सन्तोष को धारण कर यज्ञादि निष्काम कर्मों का अनुष्ठान और ईश्वर प्राणिधान द्वारा सभी कर्मों को उस परम गुरु को समर्पित कर निष्काम कर्मों का अनुष्ठान और ईश्वर प्राणिधान द्वारा सभी कर्मों को उस परम गुरु कोसमर्पित कर निष्काम बन सकता है।

४. जैसे ईश्वर जगत् का द्रष्टा है वैसे ही कर्त्तव्य भाव से वर्ण एवं आश्रम धर्मों का पालन और मुझसे ये अच्छे कर्म ईश्वर ही करा रहा है। मैं तो केवल निमित्त मात्र हूँ। जैसे कमल का पत्ता जल में रहकर भी अलिप्त रहा है वैसे ही सब कर्म ब्रह्मार्पण कर हम शोक से पृथक् रहा सकते हैं।

५. ईश्वर सदैव शुद्ध, मुक्त स्वभाव है। योग के ग्रन्थों में मुक्ति के लिये जो उपाय बतलाये हैं उनका अनुष्ठान करने से कोई भी मुक्ति को प्राप्त कर जितना समय मुक्ति का है उतने समय तक मुक्ति सुख का आनन्द प्राप्त कर सकता है। इसके बिना कोई दूसरा उपाय आनन्द प्राप्ति का नहीं है।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय ।

❖❖❖

ज्येष्ठ समीक्षक एवं आर्य पत्रकार प्राचार्य देवदत्ततुंगार

डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे

महाराष्ट्र के गिने चुने अग्रणी प्रत्रकारों में प्रा. देवदत्त तुंगार का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। आपका जन्म २४ नवम्बर सन् १९३४ को अहमदनगर जिले के मदडगाँव टाकली में हुआ था। आपके पिता स्व. हरिसखाराम तुंगार कोल्हापुर नरेश छत्रपति शाहूमहाराज के निकट के विद्वानों और परामर्शदाताओं में से एक थे। उन्होंने सन् १९१८ में शाहूमहाराज की प्रेरणा से कोल्हापुर रियासत में सर्वप्रथम ''आर्यभानु'' साप्ताहिक प्रारम्भ किया था। शाहूमहाराज जो छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशज थे उन्होंने ही स्व. हरिसखाराम जी को स्वामी दयानन्द चरित लिखने की सूचना दी थी उन्हीं के निर्देशानुसार हरिसखाराम तुंगार जी ने ''महर्षि दयानन्द सरस्वती यांचे चरित्र व कामगिरी'' यह ग्रन्थ आज से सौ वर्ष पूर्व लिखा था। मेरा ऐसा मत है, कि इसका हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ आज के आर्य युवकों एवं शोध कर्ताओं के समक्ष आना चाहिए।

उनके सुपुत्र प्राचार्य देवदत्त तुंगार में अपने पिता के साहित्यिक गुण संपूर्णत; आ गये हैं। इन्हीं बौद्धिक सम्पदाओं से युक्त प्राचार्य देवदत्त तुंगार साहित्य सेवा का व्रत निभा रहे। मैं इतना आश्वस्त होकर क्यों कह रहा हूँ तो मैं बाल्यावस्था से ही उनके और उनके पिता स्व. हरिसखाराम जी के सानिध्य में रहा हूँ। मैं जब गुरुकुल घटकेश्वर हैदराबाद में प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर रहा था, तब स्व. हरिसखाराम तुंगार गुरूकुल में बच्चों को पढ़ाते थे और श्री देवदत्त तुंगार हैदराबाद में पं.नरेन्द्रजी के सहयोग से शिक्षा ग्रहण कर रहे थे। उस समय मैं ६ वर्ष का बालक था। मुझे याद है श्री देवदत्त तुंगार सप्ताह में एक बार अपने पिताजी से मिलने गुरूकुल आया करते थे और मुझे भी श्री देवदत्त तुंगार (काका) भविष्य के सन्दर्भ में दिशानिर्देश दिया करते थे। पिता पुत्रों के प्रेरक उपदेशों के कारण ही लेखक आज इस काबिल बन पाया है। और सामाजिक एवं साहित्य के क्षेत्र में प्रगति कर सका।

श्री देवदत्त तुंगरजी ने हैदराबाद से समाजशास्त्र और डॉ. अंबेडकर विद्यापीठ औरंगाबाद से अर्थशास्त्र में एम.ए. द्वय किया है। आपने अपने प्राध्यापकीय काल में नान्देड, पुणे, रायगढ़, आदि स्थानों पर प्राध्यापक एवं प्राचार्य पद विभूषित किया है। आपने अध्यापन कार्य करते हुए भी पत्रकारिता नहीं छोडी तथा सेवारत रहते हुए पचासों साप्ताहिकों, मासिकों 'एवं दैनिको' में लेख एवं सम्पादकीय आदि लिख कर समाज का प्रबोधन किया है। आपके लेखन की विशेषता यह रही है कि आर्य समाजिक पृष्ठभूमि रहने के कारण कभी अन्धाविश्वास अथवा जातीयता को महिमा मण्डित नहीं किया, बल्कि सर्वदा उसका विरोध आपके लेखों एवं सम्पादकियों में दिखाई देता है।

आपने उच्चवर्णीय होकर भी एक सामान्य परिवार की कु. शारदा पिता शिवराम जिंदमजी की कन्या से तब विवाह किया जब जातिवाद का चहे ओर बोलबाला था। आपको और आपके माता - पिता को समाज ने जाति बहिष्कृत कर दिया था। आपकी माताश्री लक्ष्मीबाई तुंगार एक मधुर भाषिणी एवं आर्यत्व को निभाने वाली महिला थी। आपके कारण ही लेखक (डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे) का अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हो सका।

आपका विचार संकीर्ण कभी नहीं रहा है। अत: उच्च विभूषित समाज से होकर भी ''अन्तर्जातीय विवाह मंडळ रेणापूर'' के अध्यक्ष पद पर रहते हुए आपने सैकडों जातिविरहित विवाह सम्पन्न करवाये।

आपका और मेरे पिता स्व. रामस्वरूप जी लोखण्डे का सम्पर्क तब आया जब सन् १९५७ में हिन्दी सत्याग्रह के लिए दोनों पंजाब गये। वहां आप दोनों को एक ही जेल में रखा गया था। दोनों को जेलमित्र भी कहना अनुचित नहीं होगा। उसके पश्चात् आप दोनों आजीवन अभिन्न मित्र बनकर रहे। आपके स्वभाव और वाणी दोनों में मधुरता है। आप ''अजात् शत्रु'' के नाम से जानें जाते हैं। आपको मैंने क्या किसी ने भी आज तक आक्रोश एंव क्रोध करते हुए कभी नहीं देखा है।

आपके पास सम्पूर्ण महाराष्ट्र के समाज सुधारकों का परिचय एवं उनका सैद्धान्तिक ज्ञान इतना भरा पडा है कि मुझे लगताहै कि वह कभी समाप्त होने वाला नहीं है। स्वामी दयानन्द से लेकर, महात्मा फुले, आगरकर, शाहू महाराज, साने गुरूजी आदि समाज सुधारकों की अनसुनी घटनाएं आपके स्मरण में आज भी हैं।

अभी हाल ही में नान्देड (महा) में स्व. नरहर कुरून्दकर व्याख्यान माला में आपने राजाराम मोहनराय, न्या. महादेव गोविन्द रानडे, म. दयानन्द, म. फुले आदि सुधारकों के साथ ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, सत्यशोधक समाज के अनेक सिद्धान्तों एवं घटनाओं पर लगातार सवा घंटा भाषण दिया, जो उनकी स्मरणशक्ति का परिचायक है। ऐसे वक्ता, विचारक लेखक और समाज सुधारक से हम उतना लाभ नहीं उठा सके जितना हमें उठाना चाहिये था। मैं उन्हें हमेशा आग्रह करता रहता हूँ कि अब आप सारा समय अपने संस्मरणों को लेखबद्ध करने में लगाइये, देखें वे मेरी प्रार्थना को स्वीकार करते हैं या नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति पूर्ण नहीं होगा कि श्री देवदत्त तुंगार नव जागरण काल का एक चलता फिरता कोष है। वे जब भी लातूर मेरे निवास पर आते हैं तो मेरी लाब्रेरी में पूरा दिन बिताते हैं। चर्चा करते हैं तो शतक पूर्व के संस्मरण उजागर हो जाते हैं।

आपके समाज कार्यों को प्रत्यक्ष रखकर देश की अनेक संस्थाओं ने आपको सम्मानित किया है। श्री प्राचार्य देवदत्त तुंगार (काका) इनकी आयु इस समय ८३ वर्ष है वे, इस २४ नवम्बर को ८४ वर्ष के हो जायेंगे उन्हें दीर्घायु प्राप्त हो इसी अभिलाषा के साथ उनके सुखी जीवन की मैं मनोकामना करता हूँ।

पता- सीताराम नगर, लातूर (महा)
पिन - ४१३५३१.
मो. नं. – ९९२२२ ५५५९७

❊ वेद अपौरुषेय हैं' – डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री ❊

मुंबई। वैदिक दर्शन प्रतिष्ठान की ओर से आर्य समाज सांताक्रूज, मुंबई में 'वेद और विज्ञान' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। परिसंवाद दो सत्रों में विभाजित था। पहले सत्र में शिक्षा, साहित्य और पत्रकारिता जगत की तीन हस्तियों को सम्मानित किया गया। इस क्रम में लर्नर्स अकादमी के प्राचार्य एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त श्री रामनयन दूबे को 'वैदिक शिक्षा रत्न सम्मान' दिया गया। सेंट पीटर्स संस्थान पंचगनी के हिंदी विभागाध्यक्ष तथा चर्चित यात्रावृत्तांत 'देखा जब स्वप्न सवेरे' के लेखक डॉ. जीतेन्द्र पांडेय को 'वैदिक साहित्य श्री सम्मान' प्रदान किया गया। पत्रकारिता जगत में अपनी अलग पहचान बनाने वाले एवं कई भाषाओं के जानकार दैनिक समाचार पत्र हमारा महानगर के संपादक श्री राघवेंद्र द्विवेदी को 'वैदिक पत्रकारिता सम्मान' से विभूषित किया गया। सम्मान सत्र का कुशल संचालन भारती श्रीवास्तव तथा सुमन मिश्रा ने किया।

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में 'वेद और विज्ञान' पर स्वामी योगानंद सरस्वती, अरुण अब्रोल, संदीप आर्य, विश्वभूषण आर्य, सुमन मिश्रा, राहुल कुमार तिवारी, तेजस सुमा श्याम, योगेश सुदर्शन आर्यवर्ती, दिलीप भाई वेलाणी और विजयपाल शास्त्री ने अपने-अपने विचार रखे। डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री की अध्यक्षता वाले इस सत्र का सारगर्भित संचालन संस्था के अध्यक्ष पं. प्रभारंजन पाठक ने किया। वैज्ञानिक डॉ. कृष्ण कुमार मिश्र बतौर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में बताया कि वेद हमारी थाती हैं। अतः उनका संरक्षण जरूरी है। अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री ने कहा वेद अपौरुषेय हैं। इनमें सारी विद्याएँ बीज रूप में विद्यमान हैं। यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम उनका विकास करें। उन्होंने वेद की असीम संभावनाओं को रेखांकित करते हुए बताया कि इसके संरक्षण और संवर्धन में सृष्टि का कल्याण निहित है। प० प्रभारंजन पाठक जी ने हनुमान जी की जाति बताने वाले राजनेताओं पर कटाक्ष करते हुए बताया कि हनुमान जी मात्र महापुरुष थे, 'आर्य' थे। आर्य का अर्थ कोई जाति-संप्रदाय-पंथ नहीं बल्कि 'श्रेष्ठता' है। डॉ. जीतेन्द्र ने अपने उद्बोधन में कहा कि जब तक वेद को नई पीढ़ी से नहीं जोड़ा जाएगा तब तक हमारा प्रयास अधूरा रहेगा। 'वेद और विज्ञान' विषय पर बोलते हुए आर्य समाज सांताक्रुज के मंत्री संदीप आर्य ने कहा - आज के वैज्ञानिकों को चाहिए कि वे वेदों के गूढ़ ज्ञान को विज्ञान से जोड़कर नए-नए अनुसंधान करके विश्व को लाभान्वित करें।

आमंत्रित अतिथियों को स्मृतिचिह्न और अंगवस्त्र के द्वारा सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में मौजूद सैकड़ों शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं को स्वामी दयानंद सरस्वती की पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश' भेंट की गई। इस अवसर पर लालचंद तिवारी, आर. के. सहगल, मदन रहेजा, मुन्ना यादव 'मयंक', नरेंद्र शास्त्री, पद्मा दूबे, डॉ. साधना, अजित उपाध्याय, मंगलदेव तिवारी, धर्मेन्द्र उपाध्याय, मंसा मिश्रा आदि गणमान्य उपस्थित थे। अंत में श्री सुनील मानकटाला जी ने सबके प्रति आभार व्यक्त किया।

विचार शक्ति का चमत्कार
(आत्मदर्शन क्या है?)

प्रिय पाठकों,

प्राय: आत्मदर्शन का अर्थ आत्मा के बारे में जानना या मैं कौन हूँ और कहाँ से आया हूँ और कहाँ मुझे जाना है लगा दिया जाता है। लिकिन इस के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ है जैसे स्वं के बारे में जानना, अपने आप से दूर न भागना हमेशा अपने आप को अपने साथ में रखना (अब दुख का अर्थ विस्तार से समझ लेते हैं। स्वं अपने आप से वफादार रहना जिस का अर्थ है मन, वचन कर्म से एक रहना, अपने विचारों के प्रति, कर्मो के प्रति गंभीर रहना इस के लिए सर्व स्वीकारिता का भाव अंत:करण मे होना चाहिए और अपने उपर किसी भी प्रकार की जबरजस्ती नहीं होनी चाहिए। लेकिन हाँ, सामने वाले को समझते हुए स्वं का सत्य में रखते हुए, बिना अपने आपको दबाये या बिना स्व की उपेक्षा किये यह कार्य करना चाहिए। इस सब का सीधा अर्थ यह निकलता है कि जबतक परमात्मा की बनाई मूर्तियों से, (जिसमें हम स्वं भी आ जाते हैं) या दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति नही समझते या अपने चित्त को उत्साह, प्रसन्नता, आनंद से भरा नहीं रखते तब तक हमारा उद्धार नहीं हो सकता। यानि पूरा जीवन हमारा दूसरों के प्रति ईर्ष्या का नापसंदी का शिकायत या उदासीनता का भाव बना रहता है और इन सब से असंतोष बना रहता है। स्वं से प्रेम करने का अर्थ है स्वं की भावनाओं से मानसिकता से, द्रष्टि से संवेदनाओं से प्रेम करना। हमारे अंदर भी कई कमियॉ हो सकती हैं उनको लेकर बार बार स्वं को परेशान न करना या कोई कमी न दिखती हो तो काल्पनिक कमी को पैदा कर उससे अपने आप को परेशान करना सारांश यह है कि जिन में आती हुई कठिनाइयों के हम स्वं कारण हैं। हम ही अपने आपके सब से बडे शत्रु है। विचार कीजिए, जब तक हमें नेस्व को नहीं स्वीकारा तबतक हम दूसरे को कैसे स्वीकार सकते हैं और तब तक दूसरे भी हमे स्वीकार नहीं पाएंगे। हमारे औरा में आते ही हमसे छिटक कर दूर हो जायेंगे। शेष अगले अंक में। धन्यवादः

राजकुमार भगवतीप्रसाद गुप्त

उपप्रधान - आर्य समाज वाशी.

सन्मा. संपादक महोदय
नूतन निष्काम पत्रिका,
सविनय सादर प्रणाम...

महोदय,

आपकी नूतन निष्काम पत्रिका नियमित रुप से प्रकाशित होती है और मुझे मिलती है और मैं पढते भी रहता हूँ। इस वाचन पद्धति से हिन्दी भाषा भी सीख रहा हूँ, हिन्दी भाषा में लिखने का याने पत्राचार करने का प्रयास भी कर रहा हूँ।

नतन निष्काम पत्रिका-वर्ष-९ अंक-११, नबम्बर २०१८ इस अंक के पृ. ५ से ७ तक ''हिंदी के बढ़ते वैश्विक प्रभाव में महर्षि दयानंद एवं आर्य समाज का योगदान'' इस शीर्षक के लेख में हिन्दी भाषा का गौरवगान गाया गया है। दुनिया के सभी २०६ देशों में करीब १३० करोड लोग हिन्दी को बोल रहे हैं और हिंदी दुनिया की सबसे अधिक बोले जानेवाली भाषा बन गई है।'' भारत देश में भी सर्वाधिक बोले जानेवाली भाषा हिंदी है।

परंतु दक्षिण भारत में विशेषतया तामिलभाविक राज्य में हिंदी का तीव्र विरोध हो रहा है। भारत के शैक्षणिक क्षेत्र में त्रिभाषासूत्रानुसार प्रदेश भाषा-हिंदी भाषा अंग्रेजी भाषा पुदुच्चेरी (पाण्डिचेरी) की विधानसभा ने प्रस्ताव पारित किया है के संस्कृतभाषा विरहित त्रिभाषासूत्र हमें मंजूर नही है। महाराष्ट्र राज्य के हिन्दी भार्षिक शिक्षको ने ५वीं से ७वीं तक वर्गों के लिये हिंदी के साथ संस्कृत भाषा का विरोध किया है और कर भी रहे हैं। ८वीं से १० वी तक हिंदी + संस्कृत का विरोध नही हुआ है। और भी एक विशेष बात यह है के हिंदी पूर्ण या संस्कृत पूर्ण ऐसा पर्याय अथवा हिंदी + संस्कृत ऐसी पर्यायि व्यवस्था मान्य की गयी है और चल रही है।

हिंदी पूर्ण या संस्कृत पूर्ण ऐसी पर्यायि व्यवस्था से हिंदी संस्कृत को मार रही है और संस्कृत हिंदी को मार रही है यह हिंदी शिक्षक ध्यान में नही ले रहे हैं। इसलिये मैंने सूचित किया के संस्कृत भाषारहित चतुर्भाषासूत्र स्वीकृत किया जाना चाहिये। भारत सरकार के राज्य मंत्री डॉ. सत्यपाल सिंह जी की और संस्कृतभाषा सहित चतुर्भाषासूत्र प्रस्तावित मैं ने किया है इसकी अत्यावश्यकता भी मैं ने बतायी है। एक वर्ष होते आया है। अबतक कुछ नही हुआ।

इसलिये नूतन निष्काम पत्रिका से मेरी प्रार्थना है के संस्कृतसहित चतुर्भाषा सूत्र स्वीकृत करवाने के लिये अखिल आर्य समाज को प्रेरित करना है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वेदों का ज्ञान पाने के लिये ही आर्य समाज की स्थापना की है। चार वेद याने चार स्तंभ ही हैं। चारों वेद संस्कृतभाषा में ही हैं। संस्कृत भाषा से ही वेदों का यथार्थ ज्ञान होते मिलते रहेगा।

मुझे हिंदीभाषा आती नही। अत: यह पत्र प्रभावशील भी नही बन सकता अत: आप अपनी हिंदी भाषा में लिखवा कर सर्वत्र प्रसृत कीजिये।
''वेद्रो डखिलो धर्म मूलम्''

आपका विनम्र
गुलाम दस्तगीर बिराजदार

आनन्द स्वामी जी मेरी डायरी के एक पन्ने पर

मैं १९५२ से प्रतिदिन डायरी लिखता हूँ। मैं अपनी डायरी के आधार पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ। जब २४-१०-१९७७ का दिन आया तो उसमें लिखा था कि आज आनन्द स्वामी जी का स्वर्गवास हुआ। उनकी शवयात्रा में हजारों की संख्या में आर्य समाज के नेता और जनता शवयात्रा में शामिल थे। मैं भी शवयात्रा में शामिल था।

जब हम जामामस्जिद के पास पहुँचे तब मुसलमानों का एक जत्था शवयात्रा में शामिल हूआ। शिवमंदिर के पास कुछ सरदार भी शामिल हुए। जब हम निगम बोधघाट पहुँचे तो मैंने पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गाँधी जी को अपने कुछ साथियों के साथ देखा। श्री पूनम सूरी जी के पिता उनसे बात कर रहे थे। उन्हों ने चूडीदार पाजामा तथा लम्बा कुर्ता पहन रखा था। मुझे लगता है कि स्वामी जी का इन्दिरा जी के परिवार से सम्बन्ध रहा होगा या यह सनकी आध्यात्मिक और सामाजिक छवि के कारण था। मुझे स्वामी जी के साथ १९७३ को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मारीशस अधिवेशन मे साथ जाने का अवसर मिला। स्वामी के कई बार प्रवचन सुनने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

मामचन्द रिवाडिया
४/सी-२३ टैगोर गार्डन,
नई दिल्ली-२७
९२१२००३१६२

महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में बोधोत्सव का आयोजन

आर्य जनों को यह जानकार हार्दिक प्रसन्नता होगी कि प्रतिवर्ष की भांति आगामी वर्ष में महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में शिवरात्रि के पावन पर्व पर भव्य ऋषि बोधोत्सव का आयोजन रविवार, सोमवार मंगलवार ०३.०४.०५ मार्च २०१९ को किया जायेगा। आपसे निवेदन है कि आप यह तिथियाँ अभी से अंकित कर लेवें और इन तिथियों में अपनी आर्य समाज एवं अपनी संस्था का कोई कार्यक्रम न रखकर उक्त समारोह में अधिक से अधिक आर्य जनों के साथ टंकारा पधारने का कार्यकम बनायें। आपके आवास एवं भोजन की व्यवस्था टंकारा ट्रस्ट की ओर से होगी।

रामनाथ सहगल
मन्त्री

ईश्वर न्यायी है या दयालु?

पं. सिद्धगोपाल कविरत्न

विमला– तुम्हारा कल का प्रश्न था दया और न्याय दोनों गुण ईश्वर में साथ-२ कैसे रह सकते हैं? वास्तव में दया और न्याय दोनों साथ-२ ही रहते हैं। अन्तर केवल यह हैं, 'दया' दयालु ईश्वर अपनी तरफ से करता है और 'न्याय' वह जीवों के कर्म के अनुसार करता है। जैसे किसान ने खेत में दाना बोया, उस एक दाने की एवज में सैकड़ों दाने भगवान् ने उसे दिये। यह उसकी 'दया' है अब न्याय उसका यह है, जैसा तुमने बोया वैसा ही काटोगे। जैसा करोगे वैसा ही भरोगे। चना बोकर चना प्राप्त हो सकता है गेहूँ नहीं, यही उसका 'न्याय' है। एक पिता के चार पुत्र हैं। चारों को उसने एक-२ हजार रुपया दिया। यह उसकी पुत्रों पर 'दया' है। परन्तु यदि कोई दूसरे पुत्र से रुपये जबरदस्ती छीन लेता है, तो पिता रुपये छीनने वाले पुत्र को दण्ड देता है। यह उसका 'न्याय' है। रुपयों का देना पिता का अपनी ओर से है इसलिए वह 'दया' और दुष्ट पुत्र को दण्ड देकर अधिकारी को उसका अधिकार दिलाना पिता का 'न्याय है। एक राजा डाकू को प्राण दण्ड देता है, यह उसका 'न्याय' है, प्राण-दण्ड देकर डाकू द्वारा पीड़ित मनुष्यों की वह रक्षा करता है यही उसकी 'दया' है। यदि राजा डाकू को छोड़ देता है तो यह उसका 'अन्याय' है। वास्तव में जो मतलब 'दया' से निकलता है वही 'न्याय' से निकलता है जहाँ 'न्याय' न हो वहाँ दया कैसी? क्या अन्यायी मनुष्य भी कभी दयालु हो सकता है? 'अन्यायी' तो स्वार्थी होता है, दयालु नहीं परमात्मा न्यायकारी होने से दयालु है। उसने जीवों के कल्याण के लिए सृष्टि बनाई, यह उसकी पूर्ण 'दया' है। ईश्वर कर्मानुसार प्रत्येक प्राणी को फल दे रहा है, यही उसका 'न्याय' है।

कमला– जब कोई मनुष्य बुरा कर्म करता है, तो उसको परमात्मा जानता है या नहीं? यदि जानता है, तो उसे तत्काल ही क्यों नहीं रोक देता?

विमला– परमात्मा प्रत्येक को बुरे कर्म से तत्काल ही रोकता है। इसका सबूत यह है, जब मनुष्य बुरा कर्म करने को उद्यत होता है तो उसके अन्तः करण में उसी समय भय, लज्जा, शंका के भाव उत्पन्न होते हैं और अच्छे कर्म करता है तो हृदय में उसी समय आनन्द उत्साह उत्पन्न होता है। यह सब परमात्मा की ओर से ही होता है। इसी को अन्त:करण की आवाज कहते हैं। मनुष्य ही क्या पशुओं तक के अन्त:करण में बुरा कर्म करने पर भय, लज्जा, शंका उत्पन्न होती है। कुत्ते को जब रोटी का टुकड़ा डाला जाता है, तो वह उसी जगह उस टुकड़े को आनन्दपूर्वक खाता रहता है, और पूँछ हिलाता जाता है। वही कुत्ता जब रोटियाँ चुराकर भागता है, तो न पूँछ हिलाता है और न खुलासा खाता है। बल्कि छिपकर आड़ में खाता है, क्यों? इसलिए कि वह जानता है, यह पाप है, चोरी है इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा बुरे कर्म करने से हरेक प्राणी को उसी वक्त रोकता है। हाँ इतनी बात अवश्य है परमात्मा किसी जीव की कर्म करने की स्वतन्त्रता को नहीं छीनता। स्वतन्त्रता छीन भी कैसे सकता है, जबकि जीव 'अनादि' है और कर्म करने में स्वतन्त्र है? दूसरे यदि ईश्वर जीवों की स्वतन्त्रता छीन भी ले तो वे जीन न तो जीव ही रहेंगे और न उनकी उन्नति ही हो सकेगी। जैसे यदि किसी स्कूल में लड़कों का इम्तिहान हो रहा है, मास्टर तमाम लड़कों पर निगरानी रख रहा है कि कोई लड़का किसी का सवाल न देख ले। कई लड़के उत्तर गलत भी लिख रहे हैं। मास्टर गलत उत्तर लिखते हुए भी देख रहा है। परन्तु वह उस समय लड़कों को रोकता नहीं, लिखने देता है। वह उनकी स्वतन्त्रता में बाधा नहीं डालता। यदि मास्टर समस्त लड़कों को स्वयं ही सही उत्तर लिखा दे, तो इसमें लड़कों की व्यक्तिगत उन्नति क्या हो सकती है? और उनको पढ़ाकर परीक्षा लेने का अर्थ ही क्या निकल सकता है? ऐसी अवस्था में वे विद्यार्थी, ही न रहेंगे, बल्कि मशीन के पुर्जे जैसे बन जायेंगे। मास्टर का काम तो लड़कों को अच्छी तरह पढ़ा देना है, पढ़कर प्रश्नों का सही उत्तर लिखना लड़कों काम है। इसी प्रकार परमात्मा का काम तो जीवों को वेद द्वारा विधि- निषेध के कर्मों का ज्ञान प्राप्त करा देना है, अच्छे या पुरे कर्म करना नहीं। कर्म तो जीव स्वतन्त्रता से ही करेंगे। यदि ज्ञान के अनुकुल कर्म करेंगे, तो सुख प्राप्त करेंगे और अज्ञान के अनुकुल करेंगे तो दुःख प्राप्त करेंगे। वेद ज्ञान के अतिरिक्त प्रत्येक प्राणी के अन्त:करण में भी बुरा कर्म न करने का आदेश परमात्मा की ओर से अवश्य होता है। उस आदेश पर प्राणी ध्यान दे या न दे, यह उसकी अपनी बात है। परमात्मा का बुरे कर्मों से रोकना इसी को कहा जाता है। जीवों के कर्म करने की स्वतन्त्रता छीन लेना रोकना नहीं।

कमला– अच्छा, परमात्मा कर्मों का फल तत्काल क्यों नहीं देता?

विमला– प्रत्येक कर्म का उसी समय फल देना बन भी कैसे सकता है? कल्पना करो कि परमात्मा ने किसी मनुष्य के कर्म पर प्रसन्न होकर उसे तत्काल फल दिया कि यह मनुष्य एक साल तक आनन्द भोगेगा। अब दूसरे दिन उसने बुरा कर्म किया उसका परमात्मा ने फल दिया कि एक वर्ष दुःख भोगेगा। अब सोचो, यदि यह मनुष्य एक साल तक आनन्द भोगता है तब तो उसने पहले कर्म का फल प्राप्त कर लिया और परमात्मा का नियम भी पूर्ण हो गया अब इस साल के बीच में चाहे वह कितने ही बुरे कर्म करे, उसका फल इस साल नहीं मिलना चाहिए। यदि इसी साल बुरे कर्म का भी फल मिलता है, तो पहले कर्म की एक साल की आनन्द भोगने की आज्ञा ईश्वर की टूट गई। जब जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है, तो कभी बुरे कर्म करेगा और कभी अच्छे कर्म करेगा ही यदि ईश्वर सबका तत्काल फल देता रहे, तो न तो बुरे कर्मों के फल की व्यवस्था बन सकेगी और न भले कर्मों के फल की व्यवस्था बन सकेगी। और न भले कर्मों के फल की व्यवस्था बन सकेगी। क्योंकि किसी भी कर्म के फल का समय पूर्ण न हो सकेगा। इसलिए परमात्मा प्रत्येक कर्म का फल अपनी नियम व्यवस्था के अनुसार ही देता है।

कमला– यह संसार में जो लाखों योनियाँ हैं, क्या कर्म के फल से ही प्राप्त होती हैं?

विमला– दुनियाँ में दो प्रकार की योनियाँ हैं। 'भोग योनि' और 'उभय योनि'। यह सब जीवों को कर्मानुसार ही प्राप्त हुई है।

कमला– 'भोग योनि' और 'उभय योनि' से क्या तात्पर्य है?

विमला– 'भोग-योनि' वह है जिसमें जीव सुख दुःख भोगते हैं परन्तु भविष्य के लिए कोई कर्म नहीं करते। जैसे पशु-पक्षी आदि। 'उभय योनि'

मनुष्य योनि है। इसमें मनुष्य सुख दु:ख रुप फल भी भोगते हैं और भविष्य के लिए अच्छे बुरे कर्म भी करते हैं।

कमला– मनुष्य को 'उभय योनि' में क्यों माना गया है?

विमला– पशु पक्षियों को केवल खाने की चिन्ता रहती है, पदार्थों के उत्पन्न करने की नहीं। उनका जन्म परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार केवल भोग भोगने को ही है, कमाने को नहीं। देखो! गेहूँ! चना, जौ, आदि अनाज सब पशु-पक्षी खाते हैं। परन्तु वे उत्पन्न नहीं कर सकते क्योंकि उनमें विचार-शक्ति नहीं है। परन्तु मनुष्य अपनी विचार शक्ति के आधार पर पशुओं से काम लेकर अनाज उत्पन्न कर सकता है। विचारशक्ति' होने के कारण ही इसे 'उभय योनि' कहा गया है। यह पदार्थों का भोग भी करता है और उन्हें उत्पन्न भी करता है। अपनी विचार शक्ति के सहारे मनुष्य समस्त पक्षियों को अपने काबू में कर लेता है। एक गड़रिए के आधीन हजारों भेड़ें रहती हैं। एक ग्वाले के आधीन हजारों गायें रहती हैं। मनुष्य शेर और बड़े-२ खूँख्वार जानवरों को सरकस में नाच नचा देता है। जानवरों से ही क्या अपनी विचारशक्ति के कारण पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि तत्वों से भी मनमाना काम ले लेता है। ईश्वर ने मनुष्य को पक्षियों जैसे पर नहीं दिये जो उड़ सके परन्तु इसने हवाई जहाज बना लिये। पानी में चलने के लिए मछली, कछुओं जैसे शारीरिक साधन नहीं दिये, लेकिन इसने पानी के जहाज तैयार कर लिए। गिद्ध और उकाब जैसी दूर की चीज देखने वाली आँखें नहीं दीं, परन्तु इसने दूरबीन और खुर्दबीन का निर्माण कर लिया। क्या बात है? यही कि मनुष्य में विचारशक्ति है। इसलिए वह 'उभय योनि' है। यह पूर्व जन्म के कर्मों का फल भोगता है और भविष्य के लिए कर्म भी करता है।

कमला– क्या जितनी योनियाँ प्राप्त होती हैं कर्मानुसार ही होती हैं और क्या मनुष्य का जीव पशु-पक्षी आदि योनियों में भी जाता है?

विमला– हाँ, समस्त योनियाँ स्वकर्मानुसार ही प्राप्त होती है। जीव समस्त योनियों में आता जाता है। मनुष्य योनि में किये हुए कर्म ही पाप-पुण्य से सम्बन्ध रखते हैं क्योंकि मैं बता चुकी हूँ कि मनुष्य में ही 'विचारशक्ति' है। जब यह 'विचारशक्ति' का दुरुपयोग करता है। तो पापी बनकर अनेक योनियों में भ्रमण करता है। ईश्वर अपनी न्याय-व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक जीव को उसके सुधार के लिये ही योनियाँ प्रदान करता है, मनुष्य जो भी अच्छे बुरे कर्म करता है, उसके संस्कार सूक्ष्म शरीर पर पड़ते हैं। यही अच्छे बुरे संस्कार उसे उत्कृष्ट-निकृष्ट योनियाँ प्राप्त कराते हैं।

कमला– 'मनुष्य योनि' कैसे प्राप्त होती है और मुक्ति कब प्राप्त होती है?

विमला– जब पाप की अपेक्षा पुण्य के संस्कार उत्कृष्ट होते हैं तब मनुष्य योनि प्राप्त होती है। और जब निष्पाप कर्मो के संस्कारों की प्रबलता होती है और ज्ञान हो जाता है, तो मरने पर मुक्ति प्राप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में जीव सांसारिक दु:खों से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हो जाता है।

कमला– हाथी का जीव चींटी में कैसे समाता होगा? क्योंकि बड़े शरीर के लिए बड़ा जीव और छोटे शरीर के लिए छोटा जीव होता होगा?

विमला– जीव छोटे बड़े नहीं होते, जीव समस्त प्राणियों के एक जैसे हैं। शरीर में छोटा बड़ापन या भिन्नता होती है। जैसे एक ही इंजन में बहुत सी मशीनें लगी हुई हैं कोई मशीन काटती है, कोई छाँटती है, कोई छापती है, इंजन सबको एक ही प्रकार की शक्ति दे रहा है, परन्तु मशीनों के पुर्जों में भिन्नता होने के कारण का भिन्न-२ प्रकार के हो रहे हैं। देखो जहाँ किसी प्राणी को मनुष्य की तरह होठ मिले हैं, वहाँ वह दूध चूसता है, जहाँ चोंच मिली है वहाँ वह ठोंगे मारता है एक खिलाड़ी जब मुर्गे का चोंगा पहिन कर ठोंगे मार सकता है फिर जीव में भेद कहाँ रहा? शरीरों में ही तो भेद हुआ?

कमला– क्या जन्म कर्मानुसार होता है? यदि होता है तो जन्म के पहले कर्म कैसा? जब बिना शरीर कर्म नहीं हो सकता तो जीव के संग जब शरीर नहीं था तो उसने कर्म किया कैसे? और जन्म रुप बन्धन में फँसा कैसे?

विमला– जन्म तो अज्ञानता से होता है और योनियाँ कर्मानुसार प्राप्त होती हैं। जैसे पहले स्कूल में लड़के का दाखिल होना अविद्या के कारण है, और श्रेणियाँ प्राप्त करना कर्म या योग्यता के आधार पर है, इसी प्रकार संसार रुपी स्कूल में जीव का आना अर्थात् प्रथम शीर धारण करना अल्पता के कारण है और अनेक श्रेणियाँ रुपी योनियों को प्राप्त करना कर्मानुसार है। दूसरे जीव का एक ही जन्म नहीं, अनन्त बार शरीर से संयोग हुआ है और होता रहेगा। अनेक जन्मों के आत्मा पर संस्कार होते हैं। यदि कहो सृष्टि के आदि में कौन से कर्मों के संस्कार थे तो उत्तर यह है कि सृष्टि के आदि में उससे पूर्व सृष्टि के संस्कार थे। सृष्टि प्रवाह से अनादि है, दिन और रात की तरह निरन्तर चक्र चला आता है और चलता जायेगा।

कमला– कुछ मनुष्यों का कहना है है कि छोटे-२ प्राणियों में विकास होकर मनुष्य का शरीर बना है। मनुष्य सृष्टि का अन्तिम विकास है। यह कहाँ तक ठीक है?

विमला– बहिन, यह बात गलत है। यदि ऐसा होता तो मनुष्य की उपस्थिति में अन्य प्राणियों का अभाव होना चाहिए था, परन्तु देखा यह जाता है कि मनुष्य भी मौजूद हैं और अन्य छोटे-बड़े प्राणी भी मौजूद हैं। फिर कैसे माना जाय कि प्राणियों का विकास होते-२ मनुष्य का विकास हुआ है। जब अंकुर में विकास होकर वृक्ष बन जाता है फिर अंकुर कहाँ रहता है? कली में विकास होकर जब फूल बन जाता है तब कली कहाँ रहती है? दूसरी बात विचारणीय यह है कि मनुष्य के अतिरिक्त जो भी प्राणी हैं, उन सबमें 'सामान्य ज्ञान' है परन्तु 'विशेष ज्ञान' मनुष्य में ही पाया जाता है। मनुष्य में 'विशेष ज्ञान' कहाँ से हुआ? विचार शक्ति से। यह 'विचारशक्ति' अन्य प्राणियों में नहीं पाई जाती। यदि पशु-पक्षी इत्यादिकों में विचारशक्ति होती तो मनुष्य उन पर शासन नहीं कर सकता था। देखो यह बात मानी हुई है कि अभाव से भाव कभी नहीं होता। यदि मनुष्य अन्य प्राणियों का विकसित रुप होता तो अन्य प्राणियो में विचार-शक्ति पाई जाती, परन्तु ऐसा नहीं है। विकासवाद कहता है कि बन्दर में मनुष्य का विकास हुआ है। यदि ऐसा होता तो मनुष्य का बच्चा पानी में डाल देने से डुब नहीं सकता था। जब बन्दर से मनुष्य बना है तो बन्दर की तमाम शक्तियाँ मनुष्य में विकसित होनी चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं है। बन्दर के बच्चे को पानी में डाल दो तो फौरन तैर कर निकल जायगा। परन्तु मनुष्य का बच्चा तैरना न जानने के कारण डूब जायेगा। इससे सिद्ध है कि मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जितनी भी योनियाँ है। सबका निर्माण अपनी न्याय-व्यवस्था से कर्मानुसार भगवान् करता है।

धार्मिक बनने का आधार

डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे

प्र. मनुष्य का आत्मा सदा धर्मयुक्त कैसे हो सकता है ?

उ. निम्नलिखित तीन बातों को ध्यान में रखकर मनुष्य सदा ही धर्मात्मा रह सकता है:-

(१) जब मनुष्य परमात्मा को सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक और सब कर्मों का साक्षी मान कर बुरा काम करने से डरता है, तब वह धर्मात्मा हो जाता है। अर्थात् वह जानता है कि मेरा कोई भी कर्म ऐसा नहीं, जिसे परमात्मा जानता न हो। यदि बुरा कर्म करूँगा, तो उसका फल दु:खरूप में वह अवश्य प्रदान करेगा। अत: वह बुरा काम न करके धर्मात्मा बना रहता है।

(२) सत्य विद्या, सुशिक्षा, सत्पुरुषों की संगति, परिश्रम (उद्योग), जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुणों को धारण करने से धर्मात्मा होता है।

(३) अपने पास धन की जितनी सामर्थ्य है, उसके अनुसार ही व्यय करने से धर्मात्मा बनता है।

प्र. आपने परमात्मा से डर कर बुरा काम न करने वाले कोधर्मात्मा कहा है। राजा आदि भी तो दण्ड देते हैं। क्या उनसे डर मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकता ?

अथवा

राजा आदि मनुष्यों से डरने वाला और परमात्मा से न डरने वाला धर्मात्मा क्यों नहीं हो सकता ?

उ. केवल राजा के दण्ड से डरने वाला धर्मात्मा नहीं हो सकता, क्योंकि राजा आदि अल्पज्ञ होते हैं। वे न तो मनुष्य के सभी बुरे कर्मों को जान सकते हैं और न ही मन आदि अन्त: करण में होने वाले बुरे कर्मों को जानकर उनका फल दे सकते हैं। वे केवल बाहर के देखे जाने वाले धर्मयुक्त कर्मों का ही दण्ड दे सकते हैं। एकान्त में तथा मन व अन्त:करण से होने वाले बुरे कामों को तो केवल परमात्मा ही जान सकता है। अत: उनसे बचने के लिए परमात्मा का भय आवश्यक है।

प्र. मनुष्य के आत्मा और मन का द्रष्टा और नियमन करने वाला राजा कौन है ?

उ. आत्मा और परमात्मा।

प्र. ऐसा कौन–सा स्थान या कर्म है जिसे आत्मा और परमात्मा न देखते हों ?

उ. कोई भी नहीं।

प्र. मनुष्य कब बाहर से भी दुष्ट कर्म करने में भय और शंका नहीं करते ?

उ. एकान्त में, जहाँ राजा आदि का भय नहीं होता तथा जो परमात्मा से भी नहीं डरते, वे चोरी आदि दुष्ट कर्म करने में भय या शंका नहीं करते।

प्र. जो आत्मा और परमात्मा को साक्षी मान कर अनुकूल कर्म करते हैं, वे क्या कहलाते हैं ?

उ. धर्मात्मा।

दृष्टान्त : विद्वान् और दो विद्यार्थी

प्र. 'धर्मात्मा' के लक्षण बताने वाला कौन–सा दृष्टान्त महर्षि ने दिया है ?

उ. विद्वान् और दो नये विद्यार्थियों का।

विद्वान् ने दो नये विद्यार्थियों की धार्मिकता की परीक्षा किस प्रकार ली ?

उ. विद्वान् ने दोनों विद्यार्थियों से कहा कि हम तुम्हें तब पढ़ायेंगे, जब तुम दोनों एक-एक लड़के को एकान्त में ले जाकर, जहाँ कोई भी न देख रहा हो, कान पकड़ कर, दो-चार बार उठक-बैठक करा कर एक चपेय मार कर लाओगे।

प्र. तब दोनों विद्यार्थियों ने क्या किया ?

उ. इनमें से एक विद्यार्थी ने चारों ओर किसी को भी न देखकर झटपट विद्वान् द्वारा कहे कार्य को कर डाला। परन्तु दूसरा विद्यार्थी उस आज्ञा पालन से पहले विचार करने लगा कि लडका मुझको देख रहा है और मैं लड़के को देख रहा हूँ, फिर यह काम कैसे कर सकता हूँ? अत: वह बिना कार्य किये यानि दूसरे लड़के को चपेट आदि मारे बिना ही विद्वान् के पास लौटा आया।

प्र. इन दानों में से किसका आचरण उचित था ?

उ. दूसरे विद्यार्थी का।

प्र. उसने तो विद्वान् अध्यापक की आज्ञा का पालन नहीं किया था। फिर उसका आचरण उचित कैसे था ?

उ. वास्तव में, विद्वान् की आज्ञा का पालन तो इसी ने किया था। क्योंकि विद्वान् ने कहा था कि यह कार्य बिल्कुल एकान्त स्थान में करना है, जहाँ कोई भी देखता न हो। उसको ऐसा कोई स्थान नहीं मिल सका जहाँ परमात्मा और आत्मा साक्षी न हों और यही सच्चाई भी है।

प्र. पण्डित ने इस दूसरे विद्यार्थी को क्या कहा ?

उ. पण्डित ने इस दूसरे विद्यार्थी को कहा कि तू बुद्धिमान् और धार्मिक है, अत: तू मुझसे पढ़ सकता है।

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष–१० अंक–१ मुम्बई जनवरी– २०१९ || पृष्ठ–१६ || मूल्य– रु. १/–

पौष – २०७५ (२०१९) Post Date : 25-01-2019 MCN/136/2019-2021 MAHRIL 06007/31/12/21-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रूज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई–२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई–४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● **दूरभाष : २६६० २८००/२६६० २०७५**

प्रति, ______

टिकट

प्र. पहले विद्यार्थी को, लडके को पण्डित के कथनानुसार चपेट मार कर आ गया था, पण्डित ने क्या कहा ?

उ. उससे कहा कि तू पढ़ने के योग्य नहीं है, यहाँ से चला जा।

विद्वान् और धार्मिक

प्र. क्या सब मनुष्यों का विद्वान् बनना सम्भव है ?

उ. नहीं।

प्र. क्या सब मनुष्यों का धर्मात्मा होना सम्भव है ?

उ. हाँ।

प्र. स्वयं धार्मिक होकर भी दूसरों को धर्म में निश्चय कौन नहीं करा सकते ?

उ. अविद्वान्।

प्र. स्वयं धार्मिक होकर भी दूसरों को भी धार्मिक कौन बना सकता है ?

उ. विद्वान्।

प्र. धूर्त किसको बहका कर अधर्म में प्रवृत्त कर सकता है ?

उ. अविद्वान को।

प्र. धूर्त किसको बहकार कर अधर्म में नहीं चला सकता ?

उ. विद्वान् को।

प्र. अविद्वान् की तुलना महर्षि ने किसके साथ की है ?

उ. अन्धे के साथ।

प्र. क्यों ?

उ. जिस प्रकार अंधा व्यक्ति न देखने के कारण कुँए में गिर सकता है, उसी प्रकार अविद्वान् भी सत्य-असत्य या धर्म-अधर्म का पूरा ज्ञान न होने के कारण अधर्म में फँस सकता है।

प्र. विद्वान् किसको ठीक–ठीक जान सकता है ?

उ. सत्य-असत्य को।

प्र. सत्य–असत्य में स्थिर कौन नहीं रहा सकता ?

उ. अविद्वान्।

प्र. विद्वान् धार्मिक और अविद्वान् धार्मिक में क्या अन्तर है ?

उ. (१) अविद्वान् धार्मिक होकर भी दूसरों को धार्मिक नहीं बना सकता, जबकि विद्वान् धार्मिक दूसरों को भी धार्मिक बना सकता है।

(२) अविद्वान् को तो कोई भी धूर्त बहका कर अधर्म में लगा सकता है, जबकि विद्वान् को नहीं बहका सकता। जैसे आंखों से देखता हुआ मनुष्य कुँए में नहीं गिर सकता, इसी प्रकार ज्ञानी अधर्म में नहीं फँसता। इसके विपरीत, अंधा न देख पाने के कारण कुँए में गिर सकता है, इसी प्रकार अविद्वान् ज्ञान न होने के कारण अधर्म में फँस सकता है।

(३) विद्वान् सत्यासत्य को ठीक-ठीक जानकर उसमें स्थिर रह सकता है, जबकि अविद्वान् सत्यासत्य को ठीक-ठीक न जानकर उसमें स्थिर नहीं रह सकता।

दृष्टान्त: अविद्वान् राजा और भिक्षक ब्राह्मण

प्र. अविद्वान् धार्मिक के सन्दर्भ में महर्षि ने कौन–सा दृष्टान्त दिया है ?

उ. अविद्वान् राजा, मूर्ख भिक्षुक ब्राह्मण और दानाध्यक्ष का दृष्टान्त दिया है।

प्र. वह दृष्टान्त कौन–सा है ?

उ. इस दृष्टान्त में मूर्ख ब्राह्मण दानाध्यक्ष के माध्यम से राजा द्वारा अपनी जीविका निर्धारित करवाता है। छ: महीने के लिए साठ रुपए की जीविका मिलने पर कोषाध्यक्ष, नौकर, सिपाही और दानाध्यक्ष सबके द्वारा ठगा है। उसके पास केवल बाईस रुपए शेष बचते हैं। तब दानाध्यक्ष के कहने पर गंगाजी के किनारे जप करने बैठ जाता है। मूर्ख होने के कारण दानाध्यक्ष के शब्दों को ही पकड़ लेता है और **'मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का––'** इसको ही मन्त्र समझकर जपने लगता है।

इसी मूर्ख ब्राह्मण की नकल करके दूसरे मूर्ख भी अपनी जीविका लगवाते हैं।

❖❖❖